मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-12, अङ्क-3 मङ्गलायतन अमृत महामहोत्सव विशेषाङ्क (वि.नि.सं. 2539) मार्च 2013

मानत क्यों नहिं रे....

मानत क्यों नहिं रे, हे नर सीख सयानी ।।टेक ।।

भयौ अचेत मोह मद पीके, अपनी सुधि विसरानी ।।1 ।।

दु:खी अनादि कुबोध अव्रत तैं, फिर तिनसौं रति ठानी।
ज्ञानसुधा निजभाव न चाख्यौ, पर-परणति मति सानी ।।2 ।।

भव असारता लखै न क्यों जहं, नृप ह्वै कृमि बिट थानी।
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु, दु:खिया हरिसे प्रानी ।।3 ।।

देह एह गद-गेह इस, हैं बहु विपति निशानी।
जड़ मली छिनछीन करमकृत, बन्धन शिवसुख हानी ।।4 ।।

चाह ज्वलन ईंधन विधि वन घन, आकुलता कुलखानी।
ज्ञान सुधा सर शोषन रवि ये, विषय अमति मृतुदानी ।।5 ।।

यौं लखि भव तन भोग विरचि करि, निजहित सुन जिनवानी।
तज रुष-राग 'दौल' अब अवसर, यह जिनचन्द्र बखानी ।।6 ।।

- पण्डित दौलतरामजी

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

प्रधान सम्पादक
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :

वार्षिक	:	50.00 रुपये
एक प्रति	:	04.00 रुपये

मङ्गलायतन अमृत महामहोत्सव

विशेषाङ्क

क्या / कहाँ

सन्तों का सन्देश : विश्वास....	3
....परमात्मदशा हुए बिना.....	10
पूज्य बहिनश्री	17
पण्डितजी का पत्र :...	18
लोभ : पाप का बाप	23
समाचार-सार	26

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
स्व. श्री सुमतिचन्द्र एवं
माता **श्रीमती इन्द्राणी देवी**
की स्मृति में **श्रीयुत अजय,**
विजय, रतन, पवन जैन
मुम्बई-दिल्ली-हाथरस

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।
सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़।

नियमसार गाथा 110 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

सन्तों का सन्देश : विश्वास ला, सन्देह छोड़!

इस आत्मा का, जो पंचम परमभाव वस्तुरूप से, सत्तारूप से, अस्तित्वरूप से, जो सत् है, वह नित्य निगोद के जीवों को भी, शुद्ध निश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व पारिणामिक' इस नाम सहित नहीं... अर्थात् उसका परिणाम न परिणम सके, शुद्ध स्वभाव को न परिणम सके – ऐसा उसे नहीं है। अभव्य जीव को वस्तु है परन्तु उसे आश्रय नहीं, इसलिए वह उसे लायक नहीं, इस प्रकार यहाँ निगोद के जीव को लायक नहीं – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। निगोद के जीव में भी... आहा...हा...! यह लहसुन और प्याज, इसका एक राई जितना टुकड़ा लो तो असंख्य तो शरीर है और एक-एक जीव को तेजस, कार्माण शरीर है, ऐसे एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त आत्माएँ रहती हैं परन्तु उस आत्मा का जो सत्व-दल है, वह तो नित्य निगोद के जीव को भी शुद्ध ही है। आहा...हा...!

प्रगट हुआ है, उसे तो ठीक परन्तु नित्य निगोद के जीवों को भी शुद्ध निश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व पारिणामिक' ऐसे नामसहित नहीं... शुद्ध है। आहा...हा...! वह परमात्मस्वरूप से ही शुद्ध है और वह परमात्मस्वरूप परिणम सके ऐसा है। नित्य-निगोद के जीव में भी ऐसी शक्ति है। यह अभव्य परिणम नहीं सकता, ऐसे वे नहीं हैं – ऐसा कहते हैं।

वस्तु है न! अन्तर में चैतन्य सत् का सत्व, उसका तत्त्व जो है, वह तो ज्ञायकपने का अनन्त गुण का पूर्णरूप है, वह स्वयं स्वत:पने स्वयं अन्तर में स्वभावमय परिणम सकने की नित्य निगोद के जीव में भी ताकत है। आहा...हा...! भले इस समय न कर सके परन्तु उसमें ताकत है। नित्य निगोद का जीव (वहाँ से) निकलकर भी, मनुष्य होकर, परमपारिणामिक-स्वभाव का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति को पाये। आहा...हा...!

आहा...हा...! इससे ऐसा कहा, अभव्य जीव का जीव शुद्धरूप वस्तु तो है परन्तु वह परिणमित होने के योग्य नहीं है। जैसा पूर्णस्वरूप है, वैसा होने के योग्य वह नहीं है, ऐसा नित्य-निगोद में नहीं है। आहा...हा...!

भले नित्य-निगोद में से अभी तक त्रस हुआ नहीं परन्तु उस जीव में ऐसी ताकत है कि परिणम सकता है। वस्तु तो है परन्तु वह शुद्ध परिणम सके – ऐसी योग्यतावाले नित्य निगोद के जीव भी हैं; आहा...हा...!

आहा...हा...! जिसका सत्त्व चैतन्य, वह शुद्ध ही है, भले नित्य-निगोद में हो, त्रसपना पाया न हो परन्तु उसकी वस्तु तो शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द और परिणमने के योग्य ही है। आहा...हा...! वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में मनुष्य हो, निगोद से (निकलकर) भले एक दो भव करे, फिर मनुष्य हो। वह आठ वर्ष में शुद्धस्वरूप का परिणमन करके मुक्ति भी पावे... आहा...हा...! ऐसी उसमें ताकत है। नित्य-निगोद, जो त्रसपना अभी तक पाया नहीं, ऐसे जीवों में भी ऐसी ताकत है कि एक-दो भव बीच में करे और मनुष्य होवे तो आठ वर्ष में, आहा...हा...! निगोद का अनादि-सान्तभाव करके सिद्ध का सादि-अनन्तभाव प्रगट कर सकता है। आहा...हा...!

वहाँ भाषा काम नहीं करती, वहाँ भाव की सामर्थ्य की बलिहारी है। यह बात अनदर बैठनी चाहिए। आहा...हा...! ज्ञान में यह बात आये बिना बैठती नहीं। यहाँ तो निगोद के जीव की ताकत ऐसी है कि इतनी बात करते हैं परन्तु यह बैठे किसे ? जिसे यह चैतन्यमूर्ति भगवान परमेश्वरस्वरूप विराजमान है, उसकी अन्दर की दृष्टि हुई, सत् के सत्व को अनुभव किया, अनुभव में आया कि यह तो पूर्ण आनन्द का घन है, उस जीव को जैसे परिणमने की ताकत है, वैसे निगोद के जीव में भी इस प्रकार परिणमने की ताकत है। आहा...हा...!

यह पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को सम्बोधन करते हैं। आहा...हा...! इतनी बड़ी बात पंचम काल में की जाये या नहीं ? की जाये नहीं क्या; कर सकता है। पंचम काल का जीव भी निगोद से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में आठ वर्ष में अन्तर्मुहूर्त में आत्मज्ञान पाकर सर्वज्ञ हो सकता है। भरोसा चाहिए न! विश्वास से जहाज चलते है न ?

विश्वास, रुचि-दृष्टि परिणमन में इसे बैठना चाहिए कि यह तो प्रभु

पूरा शुद्ध सत्व है, पूर्ण आनन्द है। उसमें अशुद्धता तो नहीं, अपूर्णता भी नहीं। ऐसे नित्य निगोद के जीव हैं। आहा...हा...! तो फिर तू वहाँ से निकलकर यहाँ आया है न! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! तू यहाँ तक आया... मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा कि 'सब अवसर आ गया है' आया है न? मनुष्यपना पाया... जैनवाणी पंचम परमभाव की तुझे कान में पड़ी और क्रमबद्ध (अर्थात्) द्रव्य का पर्यायस्वभाव क्रमबद्ध है, उसका निर्णय होने की, ज्ञायकभाव की ओर का आश्रय होने की योग्यता तुझमें है। यह पंचम काल उसे कहीं रोकता नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता को ऐसा कहते हैं कि तू परिणम सकता है। तू अभव्य के जीव जैसा नहीं है। आहा...हा...! वे तो ऐसे कोई अल्प जीव ही होते हैं। तू यहाँ आया, यहाँ सुनता है, सुनने आया... यह कोई एकेन्द्रिय को नहीं कहते। आहा...हा...! भले अप्रतिबुद्ध हो परन्तु है तो भगवान! और भगवान होने के-परिणमने के योग्य ही है! भगवानरूप परिणमने के योग्य ही है! आहा...हा...! (अभव्य को भी) भगवानपना है, परन्तु भगवानपना परिणमने के योग्य नहीं है।

मैं तुझे सुनाता हूँ, वह तुझे ऐसा कहता हूँ कि नित्य-निगोद का जीव भी अभव्य जीव जैसा नहीं है। आहा...हा...! तो प्रभु! तू तो यहाँ आया, यहाँ तक आया, सुना, वीतरागस्वरूप की बात तुझे कान में पड़ी-वाणी कान में पड़ी तो कहते हैं कि तेरा आत्मा शुद्धरूप परिणमने के योग्य है! आहा...हा...! परमात्मा होने के योग्य है। आहा...हा...! परमात्मपना है, ऐसा परमात्मपना प्रतीति में आवे ऐसा तू है। आहा...हा...!

श्रोता : मङ्गल आशीर्वाद दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात ही की, अन्य बात ही नहीं। ये पंचम काल के साधु हैं और पंचम काल के श्रोता को सुनाते हैं। आहा...हा...! तू निरुत्साहित मत हो। जैसे अभव्य परिणम नहीं सकता, वैसे तू नहीं परिणम सकता - ऐसा नहीं है। तू यहाँ तक आया, वह सुन। आहा...हा...! मुनिराज ऐसा कहते हैं। भगवान को अनुसरण करके मुनिराज कहते हैं,

भगवान की वाणी भी ऐसा कहती है, उसे अनुसरण करके वे स्वयं कहते हैं। आहा...हा...! पंचम काल में ऐसा हल्का (क्षेत्र), पुण्य कम और हल्की जगह अवतार हो गया और... (ऐसा लेना) नहीं। आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द अतीन्द्रिय आनन्दरूप परिणम सके, ऐसा तू है... यह पंचम काल के प्राणी की पुकार है। कहनेवाले का तो है परन्तु श्रोता है, जिसने सुना, उसकी यह पुकार है। समझ में आया? कहनेवाला तो कहता है परन्तु तू वैसा हो सके ऐसा है... काल की राह और वाह देखना नहीं... आहा...हा...! ऐसा तुझे भगवान पूर्णानन्द का नाथ कान में पड़ा प्रभु! वह परमात्मा होने के योग्य ही है... अभव्य के जैसा तू नहीं है। आहा...हा...! इतना अधिक कह दिया। अभव्य जैसा तू नहीं है... वे नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहा...हा...!

'तारी नजरने आलसे रे नयणे न निरख्या हरि...' हरि ऐसा जो, अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाला प्रभु, तेरी नजर के आड से निधान रह गया, निधान पड़ा ही है और उस परिणमने के योग्य तू है। आहा...हा...! गजब बात करते हैं! दिगम्बर सन्तों की बात! श्रीमद् कहते हैं न? दिगम्बर के तीव वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है, श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल हो गया। इसकी रस की ऐसी पुकार है, ऐसा कहते हैं... आहा...हा...! प्रभु! तुम सर्वज्ञ नहीं न? हम अभव्य हैं या नहीं – यह आपको पता नहीं (और) एकदम ऐसी पुकार करते हो? आहा...हा...! योग्य हो! परिणमने के योग्य हो! परिणम सकते हो! आहा...हा...!

'अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने को अयोग्य है।' आहा...हा...! जिसने दृष्टि में गुलांट खायी है, पर्यायदृष्टि छूटकर क्रमबद्ध का निर्णय करने से इस ज्ञायकभाव का अनुभव हुआ है। आहा...हा...! ऐसे सुदृष्टियों को-अति आसन्न भव्यजीवों को... अल्पकाल में मुक्ति है। आहा...हा...! मोक्ष तो उसे अब निकट ही दिखता है – ऐसा कहते हैं। उसे मोक्ष तो दिखता है, अल्प काल में मोक्ष होगा – ऐसी पुकार है। आहा...हा...!

श्रीमद् ने कहा न ? वे तो गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का व्यापार था, अन्तर्दृष्टि में से आया है 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे'। अभी एक राग बाकी लगता है 'परन्तु इससे देह एक धारण कर जाऊँगा। स्वरूप स्वदेश' हम एकाध देह धारण करके हमारे देश में चले जायेंगे। राग के परदेश में अब हम नहीं रहेंगे... राग के परदेश में अब नहीं रहेंगे। 'जाऊँगा स्वरूप स्वदेश' इसका अर्थ आया कि पुण्य-पाप है, वह परदेश है, विभाव है; स्वभाव नहीं। आत्मा का वह परिवार नहीं। आहा...हा...! आत्मा का परिवार तो आनन्द-शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता और पूर्णता, यह प्रभु की सामग्री अथवा परिवार है। एकाध देह धारण करके उस स्वदेश में (जाकर) हम पूर्ण होनेवाले हैं... आहा...हा...! समझ में आया ? सर्वज्ञ से मिले नहीं... कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो सर्वज्ञ से मिले हैं।

इस आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है, आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, वह आत्मज्ञ है। सर्व को जानना, वह तो अपेक्षित बात हुई। आहा...हा...! आत्मा की पर्याय में पूर्णपने जानना, वह आत्मज्ञपना है। ऐसा अल्पकाल में सर्वज्ञपना होगा, वह हमारा स्वदेश है, उसमें हम जायेंगे। हमारा वह वतन है, परदेश में से हट जायेंगे। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, वह हमारा वतन है, वह हमारा स्वदेश है, वह हमें रहने का स्थान है। आहा...हा...!

मुनिराज ऐसा कहते हैं - तू अल्प काल में मुक्त होगा, स्वदेश में जायेगा - ऐसा तू है। आहा...हा...! अभव्य जीवराशि जैसा नहीं - ऐसा कहा न ? निगोद के जीव को भी ऐसा कहा। आहा...हा...! सुननेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहा...! हीनता का आश्रय न कर, हीन रहूँगा - ऐसा न मान; पूर्ण हो जाऊँगा - ऐसा मान। आहा...हा...! तू पूर्ण है और पूर्ण होने के योग्य है...! अभव्य पूर्ण है परन्तु पूर्ण हो सकने योग्य नहीं है परन्तु तुझसे कहते हैं कि तू पूर्ण है और पूर्ण हो सकने योग्य है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

मुनि के हृदय में पुकार यह है। स्वयं प्राप्त हुए, इसलिए कहते हैं ! तू

पायेगा ही या तू पाने योग्य ही है! आहा...हा...! अभव्य जीव की तरह नहीं! नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जीव की तरह नहीं प्रभु! तब फिर तू तो यहाँ पंचेन्द्रियपने जैनवाणी सुनने के लिए आया... आहा...हा...! अब अल्प काल में परिणमेगा। यह जैसी और जितनी प्रभुता पड़ी है, जिस सत्त्व में प्रभुता है, वैसी ही पर्याय में सत्त्व-प्रभुता प्रगट हो जायेगी - ऐसा योग्य तू है। आहा...हा...! विश्वास कहाँ से लाना? कहते हैं, उसका विश्वास आना चाहिए। विश्वास से जहाज चलते हैं... ऐसे चैतन्य के ऐसे विश्वास से इसकी परिणति पूरी हो जाती है। आहा...हा...!

श्रोता : आज का आप का सम्बोधन बहुत मीठा लगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात मुनि स्वयं कहते हैं। नित्य निगोद के जीव में भी अभव्य तो पड़े हैं, तथापि अभव्य को योग्य वह परिणमन नहीं, ऐसा तो हम इनकार करते हैं। आहा...हा...! उसमें भी ऐसे जीव हैं कि केवलज्ञानरूप परिणम जायेंगे। भले ही वहाँ से निकलकर परिणमेंगे और तू तो निकलकर बाहर आया है... आहा...हा...! और कान में परमात्मा की वाणी पड़ती है। यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहा...हा...!

यह क्या अन्तर किया कि नित्य निगोद के जीव भी परिणम सकते हैं, अभव्य जीव ऐसे नहीं हैं। गजब बात की है! प्रभु! आप तो छद्मस्थ मनुष्य हो! पंचम काल-बाल के हम मुनि नहीं... आहा...हा...! हम तो जो हैं वह हैं, हैं वह हैं, त्रिकाल हैं वही हम हैं। आहा...हा...! और तू भी वह हो सकेगा, विश्वास ला, सन्देह छोड़, नि:सन्देह कर! हम तुझसे कहते हैं कि तू परिणम सकेगा... फिर तुझे नि:सन्देहता क्यों नहीं होती? आहा...हा...! न्यालचन्दभाई! क्या सन्तों की वाणी! इन दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। आहा...हा...! फाट... फाट... प्याला है दिगम्बर सन्तों की वाणी, तीर्थंकर की जिनवाणी-दिव्यध्वनि है, वह वाणी है। आहा...हा...!

प्रभु! तू पामररूप मानता हो तो छोड़ देना। मैं भव्य होऊँगा या नहीं? अरे...रे...! प्रभु! यह तू क्या करता है? कि हम भव्य हैं या अभव्य?

काललब्धि पकी है या नहीं पकी ? – यह तो सर्वज्ञ जाने... अर...र...र...! यहाँ कहते हैं कि तुझे काललब्धि और भव्यता पकी है – ऐसा हम कहते हैं ! प्रभु ! यह तू क्या करता है। आहा...हा... !

यहाँ तो मुनिराज का पुकार है कि नित्य-निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं, हम ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! अभव्य जीव न पा सके, ऐसे नहीं हैं – नित्य निगोद में ऐसे जीव हैं भाई ! आहा...हा... ! गजब का काम किया है ! आहा...हा... ! रहने दे, आड़ की आड़ छोड़ दे... आड़ रहने दे। पूर्ण प्रभु है, प्रभु ! आहा...हा... ! भले कोई रागादि हों परन्तु वह तुझे बाधक नहीं है, वह तो ज्ञान के ज्ञेयरूप विषय है। आहा...हा... !

सर्वविशुद्ध अधिकार में नहीं आता ? दीपक घट-पट को प्रकाशित करता है – ऐसा नहीं; दीपक, दीपक के प्रकाश को-द्विरूपता को प्रकाशता है। दीपक, दीपक को प्रकाशता है और दीपक घट-पट का ज्ञान (प्रकाश) जो है, उसे (प्रकाशता है), ज्ञान अर्थात् प्रकाश उसे प्रकाशता है। ऐसे आत्मा, पर को प्रकाशता नहीं, उसका स्व और पर को जानने का जो प्रकाश स्वयं का है, उस द्विरूपता को प्रकाशता है, पर को नहीं। आहा...हा... ! वाणी तो देखो ! दीपक घट-पट को प्रकाशता नहीं; दीपक की प्रकाश की द्विरूपता को प्रकाशता है और उसका जो स्वरूप है, उसे दीपक प्रकाशता है, इसे (घट-पट को) नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा, पर को जानने में पर को प्रकाशता है – ऐसा नहीं। स्व और पर को प्रकाशते हुए द्विरूपता को प्रकाशता है, पर को नहीं, लोकालोक को नहीं। आहा...हा... ! भगवान भरपूर है, इस भरपूर भगवान को देख ! भरपूर है, पूर्ण है, और पूर्ण हो सकने योग्य है – ऐसा तुझे कहते हैं, सन्देह न कर। आहा...हा... ! वह यह पुकार करते हैं, बैठना तो इसे स्वयं को है न ? मुनिराज तो बैठाते हैं, मुनिराज तो कहते हैं। नित्य-निगोद में भी, अभव्य जैसे परिणम नहीं सकें, ऐसी बात नहीं है। आहा...हा... ! वे तो कोई अल्प जीव हैं। परिणमने के योग्य हैं ऐसे ढेर पड़े हैं। नहीं परिणमने के योग्य ऐसे जीव तो कोई अल्प और अनन्तवें भाग हैं, उनकी बात रहने दे, उस बात को भूल जा, वह है नहीं, तू वह है नहीं। आहा...हा... ! ●

दिव्यध्वनि की घोषणा

....परमात्मदशा हुए बिना नहीं रहे

भगवान ने केवलज्ञान में सम्पूर्ण विश्व प्रत्यक्ष देखा है। विश्व में छह प्रकार के द्रव्य देखे हैं – एक जीव और पाँच प्रकार के अजीव। जीव और अजीवतत्व त्रिकाली हैं और उनके परस्पर सम्बन्ध से अन्य सात तत्व होते हैं, वे क्षणिक हैं। इस प्रकार कुल नौ तत्व हैं। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष।

जीव अपना हित करना चाहता है। हित किसका करना है ? – कि अपने आत्मा का। जगत में जो वस्तु सत् होती है, उसका हित होता है, अर्थात् जिसका हित करना है – ऐसा अपना आत्मा है; इस प्रकार अपने आत्मा के अस्तित्व का निर्णय करना चाहिए।

जिन्होंने अपना हित कर लिया है और जिन्होंने अपना हित नहीं किया है – ऐसे अपने अतिरिक्त अन्य आत्माएँ भी इस जगत में है – ऐसा भी जानना चाहिए।

स्वयं अपना हित करना चाहता है, इसका अर्थ यह भी हुआ कि अभी तक अहित किया है। अपने स्वभाव के लक्ष्य से अहित नहीं होता परन्तु स्वभाव से विरुद्ध अन्य वस्तु के लक्ष्य से अहित हुआ है, अर्थात् जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव वस्तुएँ भी हैं।

जिस वस्तु में जानने की शक्ति है, वह जीव है; जिस वस्तु में जानने की शक्ति नहीं है, वह अजीव है। जीव की पर्याय में विकार होता है, उसमें अजीव कर्म निमित्त है।

जीव की पर्याय में मलिनता के चार प्रकार पड़ते हैं – पुण्य -पाप, आस्रव और बन्ध। उनमें निमित्तरूप कर्म में भी ये चार प्रकार हैं। अपने स्वभाव का भान करके उस तरफ परिणमने से शुद्धता होती है, उस शुद्धता के तीन प्रकार हैं – संवर, निर्जरा और मोक्ष। उनमें कर्म का अभाव निमित्तरूप है।

इस प्रकार भगवान ने जीवादि नौ तत्त्व कहे हैं। इनमें से एक भी तत्त्व कम नहीं हो सकता और इन नव तत्त्वों के अतिरिक्त दूसरा कोई दसवाँ तत्त्व जगत में नहीं है। यदि इन तत्त्वों को नहीं माना जाए तो कुछ भी वस्तुस्थिति सिद्ध नहीं होती।

हे भाई! 'तू जीव है' – ऐसा कहते ही 'तेरे अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थ हैं, वे तू नहीं है' – यह इसमें आ ही जाता है। अर्थात् 'जीव है' – ऐसा कहते ही अनेकान्त के बल से 'अजीव' भी सिद्ध हो जाते हैं। 'अनेकान्त' भगवान के शासन का अमोघ मन्त्र है। इस अनेकान्त के द्वारा सम्पूर्ण वस्तुस्वभाव पहिचान जाता है। बहुत से लोग अनेकान्त का वास्तविक स्वरूप समझे बिना अनेकान्त के नाम पर गड़बड़ी करते हैं। अनेकान्त तो प्रत्येक तत्व की स्वतन्त्रता बताता है और पर से पृथकता बतलाकर स्वभावसन्मुख ले जाता है।

जीव और अजीव – ये मूल द्रव्य अनादि-अनन्त निज-निजस्वरूप से भिन्न-भिन्न हैं। वे सर्वथा नित्य नहीं, किन्तु नित्यानित्यस्वरूप है। वस्तुरूप से कायम रहकर अपनी अवस्था बदलते हैं, अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। उसमें जब जीव, पर के आश्रय से उपजता है, तब उसकी पर्याय में पुण्य-पाप और आस्रव-बन्ध की उत्पत्ति होती है और जब स्वभाव का आश्रय करके उपजता है, तब संवर, निर्जरा और मोक्ष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जगत में जीवादि नौ तत्त्व हैं।

भगवान ने अपने पूर्णज्ञान में इन नौ तत्त्वों को देखा है, दिव्यध्वनि में ये नौ तत्त्व प्रतिपादित किये हैं और सच्चे श्रोता इन नौ तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझकर स्व स्वभावोन्मुख हुए हैं। स्वभावसन्मुख होने से उनकी पर्याय में से पुण्य-पाप और आस्रव-बन्धरूप विकारी तत्त्वों का अभाव होने लगा और संवर, निर्जरा तथा मोक्षरूप निर्मल तत्त्वों की उत्पत्ति होने लगी – इसका नाम धर्म है और यही हित का उपाय है।

आत्मा, आनन्दस्वभाव से भरपूर है परन्तु अज्ञानी को उसका भान नहीं है, इस कारण उसकी अवस्था में मलिनता है और उस मलिनता में

परवस्तु निमित्त है। अवस्था में होनेवाली मलिनता और परवस्तु को नहीं माननेवाला अभिप्राय मिथ्या है। जो यह मानता है कि इस जगत में एक अद्वैत आत्मा ही है तो उसे पर से और विकार से भेदज्ञान करके अन्तरस्वभाव सन्मुख होने का अवसर नहीं रहता। पर को और विकार को जाननेवाला तो पर से भिन्नता का भान करके और क्षणिक विकार का आश्रय छोड़कर, अभेदस्वभाव के आश्रय से भेदज्ञान (आत्मज्ञान) और सम्यक्‌चारित्र प्रगट करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है। 'आत्मा का हित करना है' – इसमें सब बात आ जाती है। यह सब स्वीकार किये बिना आत्मा का हित करने की बात नहीं रहती।

जगत में जो स्वयंसिद्ध छह द्रव्य और नौ तत्त्व हैं, वे ही भगवान ने ज्ञान में जानकर कहे हैं, परन्तु भगवान ने कोई नये तत्त्व बनाये नहीं हैं तथा भगवान ने कहे हैं; इसलिए वे तत्त्व हैं – ऐसा भी नहीं है और वे तत्त्व हैं, इस कारण भगवान को ज्ञान हुआ है – ऐसा भी नहीं है। जगत के तत्व स्वतन्त्र हैं और भगवान का ज्ञान भी स्वतन्त्र है। मात्र ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव ऐसा है कि जैसा ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव होता है, वैसा ही ज्ञान में ज्ञात होता है। एक तत्त्व, दूसरे तत्त्व में कुछ नहीं करता। भगवान आत्मा चिदानन्द शुद्धस्वभाव है, वह पर में कुछ नहीं करता।

– यदि **जीव** नहीं हो तो कल्याण किसका करना?

– यदि **अजीव** नहीं हो तो जीव की पर्याय में भूल कैसे हो?

– यदि जीव की पर्याय में पराश्रय से होनेवाला **विकार** नहीं होवे तो कल्याण करना कैसे रहे?

– यदि स्वाश्रय से वह विकारदशा मिटकर **अविकारी दशा** न होती हो तो कल्याण कहाँ से हो?

इसलिए – जीव है, अजीव है, अजीव के आश्रय से जीव की पर्याय में विकार है, और अपने स्वभाव के आश्रय से उस विकारदशा का अभाव होकर निर्मलदशा होती है। इस प्रकार जीव, अजीव, विकार और स्वभाव – इन चारों पहलुओं को भलीभाँति जानकर स्वभाव का आश्रय करने पर अधर्म का अभाव होकर धर्म होता है – इसमें नौ तत्त्व समाहित हो जाते हैं।

इस प्रकार भगवान को केवलज्ञान होने पर उनकी वाणी में छहों द्रव्यों की स्वतन्त्रता का उपदेश आया है। उन्होंने कहा कि प्रत्येक आत्मा अपनी चैतन्यशक्ति से प्रभु है। आत्मा और जड़ दोनों में अपनी-अपनी प्रभुता है। भले ही जड़ पदार्थों में चेतनशक्ति नहीं है, परन्तु वह जड़ वस्तु अपनी-अपनी स्वतन्त्र शक्ति सम्पन्न है। शरीरादि जड़ का पलटना स्वतन्त्ररूप से उनकी अपनी शक्ति से होता है, आत्मा अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें परिणमित नहीं कर सकता।

आत्मा में पर का कुछ भी करने की शक्ति नहीं है परन्तु अपनी अपरिमित ज्ञान और सुखशक्ति उसमें है। आत्मा किसी भी पर के आश्रय बिना स्वाश्रय से अपना कल्याण करने की सामर्थ्यवाला है। वह स्वयं ही अपनी परमात्मशक्ति को भूलकर पराधीन भी स्वयं अपने से ही हुआ है, किसी अन्य ने उसे पराधीन नहीं किया है। दुंदुभी के दिव्यनाद के बीच ऐसी स्वतन्त्रता का ढ़िढौरा भगवान के उपदेश में आया है।

भगवान के समवसरण में दुंदुभीनाद होता है, वह जगत से यह कहता है कि अरे जीवों! यदि तुम्हें अपने आत्मा का हित करना हो तो यह भगवान की वाणी सुनो! भगवान, मोक्षमार्ग के नेता हैं; अतः यदि तुम्हें मोक्षमार्ग प्रगट करना हो तो प्रभु के उपदेश को सुनो। कल्याण मन्दिर स्तोत्र में कहते हैं कि —

जीवों! प्रमाद तज दो, भज ईश को लो।
है मार्ग-दर्शक, यहाँ बस पास आजो॥
ये बात तीन जग को बतला रहा है।
आकाश बीच सुर-दुन्दुभि-नाद तेरा॥

हे भगवान! आपके समवसरण में देव दुंदुभी, आकाश में गूँज रही हैं। मानों वह जगत के जीवों को ऐसे आमन्त्रित कर रही है कि हे भव्य जीवों! आत्मा का कल्याण करने के लिए अपने समस्त प्रमादों को छोड़कर यहाँ आओ और मोक्ष के नेता ऐसे इन भगवान की सेवा करो – भगवान का उपदेश सुनो! और भगवान की दिव्यध्वनि यह पुकार करती है कि 'हे

जीवों! तुम्हें अपना हित करना हो तो वस्तु की स्वतन्त्रता जानकर स्वभाव का आश्रय करो...।' अहो! जहाँ तीर्थङ्कर भगवान विचरण करते हों और समवसरण हो, वहाँ प्रचुर धर्म वर्तता है।

वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर परमात्मा तीर्थङ्कररूप में विराजमान हैं और वहाँ प्रचुर धर्मप्रवाह चल रहा है। यहाँ से भगवान श्री कुन्दकुन्दकुन्दाचार्यदेव, सीमन्धर भगवान के पास गये थे और वहाँ आठ दिन रहकर साक्षात भगवान की दिव्यध्वनि का श्रवण किया था। यह प्रसङ्ग लगभग विक्रम संवत् 49 में बना था। वे वहाँ से दिव्यध्वनि झेलकर वापिस भरतक्षेत्र में पधारे और समयसारादि परमागमों की रचना की। उसमें वे कहते हैं कि 'भगवान दिव्यध्वनि में ऐसा कहते हैं कि हे जीवों! हम सिद्ध हैं, तुम भी सिद्ध हो; हम परमात्मा हैं, तुम भी परमात्मा हो। प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण परमेश्वर है। तुम अपनी प्रभुता को पहिचानो! जितने जीव, प्रभु हुए हैं, वे सब अपने प्रभुत्व को पहिचानकर उसके आधार से ही प्रभु हुए हैं। प्रभुता कहीं बाहर से नहीं आती, अपितु स्वभाव में शक्ति है, उसमें से ही वह प्रगट होती है; इसलिए पहले स्वभाव शक्ति को पहचानो।'

आचार्यदेव ने समयसार की पहली गाथा में ही सिद्धपने का मुहूर्त किया है कि '**वंदितु सव्व सिद्धे...**' सिद्ध भगवान को वन्दन करता हूँ, अर्थात् आत्मा को ही सिद्धपने स्थापित करता हूँ। अहो जीवों! मेरा और तुम्हारा आत्मा, सिद्ध समान है। इस पञ्चम काल में साक्षात सिद्धदशा नहीं है परन्तु स्वभाव से तो मैं सिद्ध और तू भी सिद्ध; इस प्रकार स्वभाव में सिद्धपना स्थापित करके सिद्धदशा का मुहूर्त करते हैं। यह बात सुनकर जिसने अपने आत्मा में सिद्धपना स्थापित किया, वह अल्प काल में सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा।

नाटक समयसार में पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि –

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्ध समान सदा पद मैरो;
मोहमहातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो।
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहु गुण नाटक आगम केरो;
जासु प्रसाद सधै शिवमारग, बेगि मिटै भववास बसेरो॥

अपना परमार्थ स्वभाव कैसा है – यह बतलाकर, तत्पश्चात् पर्याय की बात की है। मेरा स्वरूप तो सदा चैतन्यरूप, उपमारहित और अमूर्तिक सिद्धसमान है परन्तु पर्याय में मोह के महा अन्धकार का सम्बन्ध होने से अज्ञानी बन रहा था... किन्तु अब तो मेरे अन्तर में ज्ञानज्योति प्रगट हुई है; इसलिए मैं इस समयसार के गुण कहता हूँ कि जिसके प्रसाद से मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है और भव का वास, अर्थात् जन्म-मरण शीघ्र छूट जाते हैं।

चिदानन्दी भगवान आत्मा को उपमायोग्य कोई पदार्थ जगत में है ही नहीं। अपना पद सिद्धसमान है। – ऐसे आत्मा की श्रद्धा के बिना जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

भगवान आचार्यदेव कहते हैं कि मैं सिद्ध, तू सिद्ध। एक बार हम कहते हैं, वैसे अपने आत्मा का विश्वास करके हाँ करना। आत्मा का स्वभाव सदा सिद्ध समान होने पर भी, उसके अविश्वास के कारण तेरी वह शक्ति रुक गयी है। विश्वास के न होने कारण ही यह संसार खड़ा है।

कोई कहता है कि 'आत्मा सिद्धसमान हो तो उसे यह क्या हुआ है ?'

उससे कहते हैं कि स्वभाव सामर्थ्य से तो वह सदा सिद्धसमान है ही, परन्तु पर्याय में उस स्वभाव की असावधानी से सदा ही अज्ञानी हुआ है; वह क्षणिक अज्ञानभाव, त्रिकाली स्वरूप में नहीं है.... अब इस शुद्ध आत्मस्वभाव की महिमा का श्रवण करते-करते, विकल्प पर वजन मत देना; अपितु मैं सिद्ध हूँ – ऐसा लक्ष्य रखकर स्वभावसन्मुखता का जोर देना। पूर्ण स्वभाव के लक्ष्य से श्रवण-मनन करते-करते अवस्था में से दोष और अपूर्णता का अभाव होकर पूर्णदशा हो जाएगी।

भगवान की दिव्यध्वनि में ऐसा आया था कि हे जीवों! तुम्हारा आत्मा पर से भिन्न ज्ञानस्वरूप है, तुम परसङ्ग छोड़कर स्वभाव का परिचय करो – ऐसा करने से जो शक्तिरूप परमात्मपना है, वह पर्याय में व्यक्त हो जाएगा – ऐसा मुक्ति का उपाय भगवान ने कहा है।

आत्मा के स्वभाव की यह बात किसे बैठती-जँचती है ? जिसे पात्रतापूर्वक अन्तर में ऐसा लगे कि अहा...! भगवान ने मेरे स्वभाव की बात की है.... भगवान ने तो मेरे आत्मा की अनन्त महिमा समझाई है।

भगवान तो कहते हैं कि मेरे और तेरे में अन्तर नहीं है। अहो, ऐसा मेरा स्वभाव! इस प्रकार जो महिमा लाकर अपने स्वभावसन्मुख होता है, उसे ही अन्तर में यह बात जँचती है और उसका अपूर्व कल्याण हो जाता है। पर्यायबुद्धिवाले को यह बात अन्तर में नहीं जँचती और यह बात जँचे बिना कल्याण नहीं होता।

क्षणिक पर्याय में विकार है, उतना ही जीव अनादि से अपने को भान रहा है, इसी कारण परिभ्रमण कर रहा है। यहाँ उस पर्यायबुद्धि को छुड़ाकर द्रव्यदृष्टि कराना चाहते हैं। पर्याय में एक समय का संसार है, वह त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। एक समय के विकार में आत्मा का चैतन्यपद नहीं है; उस विकार में आत्मा को खोजनेवाले को आत्मा अनुभव में नहीं आयेगा; अपितु विकार की उत्पत्ति होगी। यदि स्वभावसन्मुख होकर अन्तर में त्रिकाली चैतन्यपद को खोजे तो उसके आश्रय से नित्य रहनेवाली परमात्मदशा हुए बिना नहीं रहे।

मङ्गलायतन के सम्बन्ध में जानकारी

फार्म नं० 4, नियम नं० 8

पत्रिका का नाम	: मङ्गलायतन (हिन्दी)
प्रकाशन अवधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
सम्पादक का नाम	: पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रण का स्थान	: मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001
स्वामित्व	: पवन जैन, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)

मैं पवन जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपुर्यक्त विवरण सत्य हैं।

पवन जैन

दिनाङ्क : 01.03.2013 प्रकाशक

पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित आत्मार्थ प्रेरक पत्र

पूज्य बड़ी बहन तथा बहनोई आदि

.........यहाँ पर्यूषण काफी अच्छे हुए थे। गाँव-गाँव से बहुत लोग पर्यूषण पर आए थे। सुबह और दोपहर को प्रवचनवाणी का प्रपात अपूर्व बरसता था। वहाँ सभी 'श्रीमद् राजचन्द्र' पढ़ते होंगे।

ज्ञानी कहते हैं कि आत्मा और देह भिन्न है। वह भिन्न ही है। अत: अन्त समय में स्वाभाविक भिन्न पड़ते हैं। इसलिए पहले से ही आत्मा को अलग करना, समझ लेना। राग-द्वेष और मोह की अशुद्धता से आत्मा को अलग करना ही (जीवन की) सफलता है। उसी की भावना और चिन्तवन लाभरूप है। वह प्राप्त हो - ऐसे साधनों की सेवना करने की भावना, वह हितरूप है।

उलझन, वह कर्मबन्ध का कारण है। यह देह भी अपना नहीं तो अन्य वस्तु तो अपनी कहाँ से हो?

बाह्य और अभ्यन्तर सर्व उपाधि से छूटकर बड़े महात्मा जंगल में बसते हैं और स्वरूपानन्द में मस्त रहकर आत्मा को उज्ज्वल बनाते हैं, उनको धन्य है।

परम पूज्य कृपालु साहिब सुखशान्ति में बिराजते हैं।

लि. बहिन चम्पा के यथायोग्य वन्दन

श्री सत्पुरुषों को नमस्कार

www.vitragvani.com www.vitragvani.com

अवश्य देखें, सुनें एवं पढ़ें

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो एवं वीडियो प्रवचन जो लगभग 9200 की संख्या में उपलब्ध हैं तथा दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा रचित अनेकों शास्त्र एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन साहित्य, दिगम्बर जैनाचार्यों का परिचय, जैन भूगोल, भक्ति-संगीत सभी एक ही वेबसाईट पर उपलब्ध हैं। जिन्हें सुना, पढ़ा और देखा जा सकता है। साथ ही आवश्यकतानुसार डाउनलोड भी किया जा सकता है।

वेबसाईट का नाम — www.vitragvani.com

सम्पर्क सूत्र - श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph. : 022-26130820, 26104912, E-mail - info@vitragvani.com

पण्डितजी का पत्र : मुमुक्षुओं के नाम

दिनाँक 23-7-1969

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे, विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये;
कहा रच्यों परपद में, न तेरो पद यहै, क्यों दु:ख सहै,
अब 'दौल' होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥

आत्मार्थी बन्धु,

जयजिनेन्द्र!

पत्र लिखने का विकल्प, उत्तर देने का विकल्प भी ज्ञानी, दु:ख का कारण जानते हैं, फिर भी अपने में नहीं रहा जाता तो ऐसे विकल्पों के ज्ञाता होते हैं –

प्रश्न – द्रव्यकर्म, नोकर्म पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए निश्चय से संसारी के भी इनका भिन्नपना है परन्तु सिद्ध की भाँति उनका (संसारी) कारण-कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम ही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक, 254 नीचे की तीन लाईन) – इसका क्या आशय है?

उत्तर – पहिले हमको यह विचारना चाहिए – यह कथन किस अपेक्षा चल रहा है? तब सब बातों का निर्णय होता है। यहाँ पर उभयाभासी का कथन है, जो पर्याय में अपने को सिद्धसमान, केवलज्ञानादि -सहित, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित मानता है। भगवान ने यह बात शक्ति-अपेक्षा कही है परन्तु अज्ञानी को इसका पता न होने से वह पर्याय में मानता है, अत: यहाँ पर बताना है – द्रव्यकर्म, नोकर्म पुद्गल का ही कार्य हैं; संसारी मिथ्यादृष्टि का भी निश्चय से सम्बन्ध नहीं है, परन्तु जैसे सिद्ध भगवान की परिपूर्णता पर्याय में हो गयी है, उनके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अभाव है, उसी प्रकार उभयाभासी अपने साथ भी विकारीपर्याय का, कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं है – ऐसा मान ले तो भ्रम है, क्योंकि अज्ञानी जीव के विकार का और कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, अर्थात् जीव में विकार एक समय का है, अपनी मूर्खता से ही है, वहाँ पर निमित्तरूप कर्म है – ऐसा स्वतन्त्र सम्बन्ध है, इस स्वतन्त्र निमित्त –

नैमित्तिक सम्बन्ध को न माने तो भ्रम ही है तथा कारण–कार्य से सम्बन्ध–कार्य, विकार तथा कारण, निमित्त / द्रव्यकर्म से है।

निमित्तकारण, अहेतुक है, सच्चा कारण नहीं है परन्तु सिद्ध के समान, संसारी के भी निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं हैं – ऐसा मानता है, इसलिए भ्रम शब्द डाला है।

याद रहे – कारण–कार्य के कई अर्थ होते हैं, यह गुरुगम से जानना चाहिए। यहाँ पर कारण–कार्य से आशय निमित्त–नैमित्तिक से ही है। तथा कारण–कार्य, कहीं पर कारण अर्थात् उपादानकारण और कार्य; कर्म को कहते हैं, यह बात यहाँ पर नहीं है।

प्रश्न – मोक्षमार्गप्रकाशक दूसरा अध्याय में पृष्ठ 39 में भवितव्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर – जैसे, जीव ने किसी वस्तु को इष्ट या अनिष्ट मानकर उसे मिलाने का और अनिष्ट को हटाने की इच्छा की – तो कहते हैं कि परवस्तु से मिलाने की, हटाने की इच्छा व्यर्थ है क्योंकि परवस्तु का होना या न होना तुम्हारे हाथ में नहीं है – 'भवितव्य आधीन है' क्योंकि प्रत्येक वस्तु का स्वतन्त्र परिणमन है। वास्तव में यह शंका क्यों होती है ? अज्ञानी को सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा का पता नहीं है और अपना पता नहीं। प्रत्येक वस्तु अनादि निधन अपनी–अपनी मर्यादा लिए परिणमती है। किसी का परिणमाया परिणमता नाही – ऐसा। (मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 में लिखा है।)

प्रश्न – क्या द्रव्यलिंगी मुनि को चौथा गुणस्थान भी हो सकता है ?

उत्तर – हो सकता है क्योंकि चौथे गुणस्थान में जीव को विशेष निर्मलता होने लगे, तब वह स्वयं मुनि होना चाहता है, तब बाहरी द्रव्यलिंग भगवान की आज्ञा अनुसार हो जाता है, वह विशेष पुरुषार्थ करता है, उसे सातवाँ गुणस्थान नहीं आता तो चौथा गुणस्थान और द्रव्यलिंग यथार्थ, ऐसा मानता है परन्तु उल्टे कोई पूछे क्या आप मुनि हैं, वह मना कर देगा। लेकिन बाहरी क्रिया में जरा भी हेर–फेर नही होगा, उदिष्ट आहार भी नहीं होगा। जंगल में ही रहेगा। शुभभाव करने का या शुभभाव से लाभ का उपदेश, तीन काल –तीन लोक में नहीं देगा – एकमात्र अपने आत्मा के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति होती है, ऐसा वचन देखने में आवेगा।

4. भाईजी ! वर्तमान में तो हमें द्रव्यलिंग भी कहीं नहीं दिखता है, क्योंकि देखो द्रव्यलिंग कैसा होता है, यह मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 245, 12 लाईन छोड़कर 'द्रव्यलिंगी मुनि.....' पढ़ो देखो –

उसे इतना होने पर भी उसे मिथ्यादृष्टि असंयमी तथा प्रवचनसार 271 में संसार का नेता कहा है।

प्रश्न – प्रत्येक द्रव्य में कितनी पर्याय एक समय में होती है ?

उत्तर – एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं – एक समय में, जितने गुण हैं, उतनी ही पर्यायें होती हैं, देखो इसमें वीतरागता भरी है। एक गुण में कितनी पर्याय ? उत्तर – तीन काल के जितने समय, उतनी एक गुण में पर्याय होती है। ऐसा ही प्रत्येक गुण में अनादि अनन्त होता है – ऐसा जानने से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि, अनादि से पर में कर्ताबुद्धि अभाव और अपने स्वभाव पर दृष्टि हो जाती है। यह बात बिना गुरुगम के नहीं होती है। होती अपने से ही है परन्तु ऐसा ही सहज निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध है। निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध की आड़ में अज्ञानी कर्ता–कर्मसम्बन्ध मानता है। वास्तव में निमित्त–नैमित्तिक का ज्ञान, ज्ञानी को ही होता है। कोई कहे निमित्त–नैमित्तिक को तो हम जानते हैं परन्तु हमें आत्मा का पता नहीं, वह झूठा है। निमित्त–नैमित्तिक का सच्चा ज्ञान होते ही ज्ञानी भगवान बन जाता है।

श्री राजारामजी एवं आप यहाँ आवे परन्तु हमको अपना राग था कि आपकी बुद्धि और राजरामजी की बुद्धि अच्छी है, यह बात समझ ले तो कल्याण हो जावे। वास्तव में अनन्त तीर्थंकर किसी का भला बुरा नहीं कर सकते हैं, तब श्री कानजीस्वामीजी किसी का भला–बुरा करें या सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दें – ऐसा नहीं है, परन्तु वर्तमान में सहज निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा ही है, जो अज्ञानी की दृष्टि में नहीं आ सकता है।

श्रीराजारामजी का भाव अभी आने का नहीं है, वह जाने। लेकिन मैं आपको बता दूँ कि कोई भी मुमुक्षु श्रीकानजीस्वामी को निर्ग्रन्थ दिम्बर मुनि नहीं मानता है, निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही सद्गुरु होता है, इसमें शक नहीं है परन्तु अपनी–अपनी अपेक्षा जैसे आपको किसी से 100 मिले तो आपको उसके प्रति

आदर का भाव आता है परन्तु संसार में तो और भी करोड़पति हैं, उनके प्रति क्यों नहीं ? उसी प्रकार जिस जीव को जिससे धर्म की प्राप्ति में निमित्तपना आया है, उसके प्रति सद्गुरु क्या शब्द है, वह उसे भगवान भी कहें तो कोई हर्ज नहीं है। जैसे – गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय, बलिहारी गुरु कहान की, भगवान दिया बताय॥

कथा में भी आता है कि एक जगह आचार्य, उपाध्याय, मुनि खड़े थे, वहाँ पर एक श्रावक भी खड़ा था – तो वहाँ पर एक देव ने आकर पहिले श्रावक को नमस्कार किया – उससे पूछा ऐसा क्यों ? उसने कहा उसने पहले भव में मुझे धर्म की बात बताई, यह बात मेरे हृदय में बैठी; इसलिए पहिले मैंने नमस्कार किया है। भाई ! बाहरी बातों में अपना जीवन खो दोगे तो अनर्थ हो जावेगा; इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आपने लिखा श्री कैलाशचन्द्रजी भी साथ आयेंगे, बहुत अच्छी बात है – आप कृपा करके उनको भी छोटी किताब 'लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' घर पर जाकर पढ़ावें और उभयाभासी का प्रकरण पृष्ठ 249-257 तक बार-बार पढ़े और पढ़ावें।

दूसरा कोई किसी को मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि कहे तो दूसरे के कहने से वह नहीं हो सकता है। इसलिए अपने परिणामों की संभाल कर प्रत्येक जीव का कर्तव्य है। कोई हमारी बुराई करता है, वह मित्र मानों – अपने में दोष हो तो निकाल दो, यदि नहीं है तो फिर क्या चिन्ता।

आप राजारामजी से मेरी तरफ से कहना कि आप भी इस बार अवश्य सोनगढ़ आवे तो ठीक रहेगा – ऐसा विकल्प है, राग है। भाई ! यह भी दु:ख का कारण है। आप अपने साथ डाक्टर साहब को भी – चावलवाले तथा पिण्डीजी तथा चमनलालजी को भी साथ लावें और अरुणकुमार जी को भी लावे तो ठीक रहेगा। आगे –

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे
अनहोनी कबहु ना होत, काहे होत आधीरा रे॥

जो पत्र भेजा है, आप अपने हितैषियों का भेजे – यदि आप उनके शुभचिन्तक हैं। जो आपने छपाया है, जो अपने भेजी थी।

प्रश्न – सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

उत्तर – (1) शान्ति, कुन्थु, अरहनाथ तीन तीर्थंकर आठ वर्ष की अवस्था में पाँचवाँ गुणस्थान, 96हजार स्त्रियों का योग होता है।

(2) भरत, बाहुबली क्षायिक सम्यग्दृष्टि – तीन युद्ध हुए, आखिर भरत ने बाहुबली पर चक्र चला दिया, तब भी क्षायिक सम्यक्त्वी थे।

(3) रामचन्द्र छह महीने लक्ष्मण की लाश को लेकर घूमे, फिर भी सम्यक्त्वी थे।

(4) महावीरस्वामी का जीव शेर पर्याय में माँस का पिण्ड उसके हाथ में, हिरन के पीछे भाग रहा था, तब मुनि को देखकर अपने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई।

(5) सातवें नरक में घोर प्रतिकूलता, वहाँ भी सम्यग्दृष्टि होते हैं, वास्तव में बाहरी संयोग से, राग–द्वेष का माप नहीं है, क्योंकि चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि को बाहरी संयोग बहुत है, द्रव्यलिंगी मुनि को नहीं है।

(2) द्रव्यलिंगी मुनि को ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी हो, मिथ्यादृष्टि है तथा शिवभूति मुनि अल्प उघाड़ सम्यग्दृष्टि उसी भव से मोक्ष की प्राप्ति –

याद रखो – बाहरी संयोग, बाहरी सामग्री, पुण्यकर्म–पुण्यभावों से, परलक्ष्यी ज्ञान से ज्ञानी, अज्ञानी की पहिचान नहीं है।

मिथ्यादृष्टि, बाहरी संयोगों से, परलक्ष्यी ज्ञान से पहिचान करते हैं; इसलिए उनका जीवन वैसे ही नष्ट हो जाता है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर ही होती है, वह सबको द्रव्यकर्म–नोकर्म–भावकर्म का ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं है, यह बात मिथ्यादृष्टियों को जँचती नहीं है। देखिये समयसार पृष्ठ 306 से 308 तक तथा समयसार पृष्ठ 205 नीचे की पतली टाइप में, समयसार गाथा 172 से 178 तक खासतौर से देखो।

भाई! सब बातें आत्मा का अनुभव होने पर ज्ञान में आती है; इसलिए लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ; तोरि सकल जग दंद फंद नित आतम ध्यावो।

प्रश्न साफ लिखने चाहिए। अबकी बार प्रश्न ठीक हैं।

भवदीय

कैलाशचन्द्र जैन

एक शिक्षाप्रद कथा मङ्गलायतन संस्कार वाटिका

लोभ : पाप का बाप

(लुब्धक की कथा)

सर्व ज्ञानमय त्रिलोक स्वामी जिनभगवान को प्रणाम करके, लोभ कषायासक्त लुब्धक सेठ की कथा लिखी जाती है।

अभयवाहन चम्पापुरी का राजा था, उसकी रानी का नाम पुण्डरिका था। उसके नेत्र पुण्डरीक कमल जैसे थे। उस नगर में लुब्धक सेठ अपनी पत्नी नागवसु तथा दो हँसमुख पुत्र गरुड़दत्त और नागदत्त के साथ रहता था।

लुब्धक अत्यन्त धनी था। बहुत धन खर्च करके उसने यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊँट, घोड़ा, सिंह, हिरन आदि पशुओं की सेना की एक-एक जोड़ी बनाई। उनके सींग, पूँछ, खुर इत्यादि में बहुमूल्य हीरे, माणिक, मोती इत्यादि रत्नों को जड़ाकर उसने इन दर्शनीय वस्तुओं का संग्रह किया। जो कोई भी इस प्रदर्शनी को देखता, वह लुब्धक की प्रशंसा करता। स्वयं

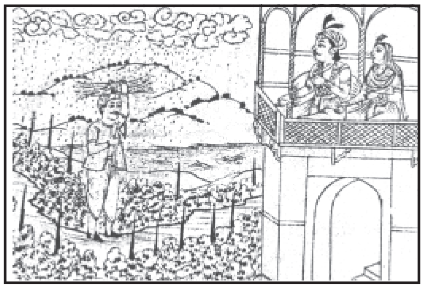

लुब्धक भी उस जगमगाती प्रदर्शनी को देखकर अपने को धन्य मानता था। उसको एक बात का दु:ख था कि वह बैल की जोड़ी बना रहा था, उसमें एक बैल बनाकर, उस पर सोना मँड रहा था, परन्तु सोना बचता नहीं होने से दूसरा बैल नहीं बना सका था, इसकी चिन्ता उसको सतत रहा करती थी। वह इस कमी को पूरी करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा करता था।

❖ ❖ ❖

एक दिन लगातार सात दिनों तक पानी गिरने से सभी नदी-नाले भर गये। कर्मवीर लुब्धक ऐसे समय में भी अपने दूसरे बैल के लिये लकड़ियाँ लेने स्वयं नदी के किनारे गया। उसने बहती नदी में से लकड़ियाँ लेकर गट्ठर बाँधा और सिर पर लेकर घर आया। सत्य है कि तृष्णा कभी पूरी नहीं होती।

रानी पुण्डरिका महल में बैठे-बैठे प्रकृति की शोभा देख रही थी। महाराज भी उसके साथ बैठे हुए थे। रानी ने बरसात में लुब्धक को भार लाते हुए देखकर राजा से कहा - प्राणनाथ! तुम्हारे राज्य में यह कोई बहुत दरिद्री है। देखो, बरसात में भी लकड़ियों का गट्ठर लेकर आ रहा है। आप इसकी कुछ सहायता करो, जिससे इसका दु:ख दूर हो।

राजा ने उसी समय लुब्धक को बुलाया और कहा - लगता है कि तुम्हारे घर की हालत ठीक नहीं है, इसलिए तुम्हें जितने रुपयों की आवश्यकता हो, उतने खजाने में से ले जाओ।

लुब्धक ने कहा - महाराज! मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए, सिर्फ एक बैल की जरूरत है।

जब राजा ने अपने बैलों में से एक बैल ले जाने को कहा, तब राजा के समस्त बैलों को देखकर लुब्धक ने राजा से कहा - पृथ्वीपति! आपके बैलों में मेरे बैल जैसा एक भी नहीं है।

यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। उसने लुब्धक से कहा - भाई! तेरा बैल कैसा है ? मैं देखना चाहता हूँ।

लुब्धक प्रसन्नता से राजा को अपने घर ले गया और अपना सोने का बैल दिखाया।

राजा ने जिसे बहुत दु:खी माना था, उसे बहुत धनवान देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

लुब्धक की पत्नी नागवसु ने राजा को अपने घर आया देखकर उनको भेंट देने के लिये स्वर्ण थाल को बहुमूल्य रत्नों से सजाकर अपने पति के हाथ में देकर कहा - हे प्रभो! इस थाल की भेंट महाराज को प्रदान करो।

थाल को रत्नों से भरा देखकर लुब्धक की छाती फटने लगी, परन्तु महाराज समीप में ही होने से उसे थाल हाथ में लेना पड़ा। थाल हाथ में लेते ही उसके हाथ थर-थर काँपने लगे। जैसे, ही उसने थाल महाराज को देने के लिये हाथों को लम्बाया कि महाराज को उसके हाथ की अंगुलियाँ सर्प

के फण-समान ज्ञात होने लगी। जिसने किसी को एक कोड़ी भी नहीं दी हो, उसका मन अन्य की प्रेरणा से क्या दान दे सकता है ? नहीं। राजा को उसके बर्ताव से बहुत नफरत हुई और उन्हें वहाँ एक पल भी रहना अच्छा नहीं लगा। वे उसका नाम फणहस्त रखकर अपने महल में आ गये।

❖ ❖ ❖

लुब्धक की दूसरे बैल की इच्छा पूरी नहीं होने से वह धन कमाने के लिये सिंहलद्वीप गया। वहाँ उसने लगभग चार करोड़ का धन कमाया। जब वह अपना धन / माल जहाज पर रखकर वापस आ रहा था तो समुद्र में तूफान आने से वाहन डूबकर समुद्र के विशाल गर्भ में समा गया। लुब्धक वहाँ ही आर्तध्यान से मरकर अपने धन का रक्षक सर्प हुआ। तब भी वह उसमें से किसी को एक कोड़ी भी नहीं लेने देता था।

सर्प को धन पर बैठा हुआ देखकर लुब्धक के बड़े पुत्र गरुड़दत्त को बहुत गुस्सा आया। उसने उसी समय उसे मार दिया। मरकर वह चौथे नरक में गया, जहाँ पापकर्मों से महा कष्ट भोगना पड़ता है।

इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभादि के वश होकर जीव अनन्त काल तक दु:ख भोगता है; अत: सुखाभिलाषियों को लोभादि का परित्याग करके जिनेन्द्र भगवान के आदेश अनुसार धर्म का आचरण करना चाहिए, जो धर्म, मोक्ष प्रदायक है।

यह कथा हमें बोध देती है कि जीव, लोभादि कषायों के वश होकर कैसे-कैसे दु:ख भोगता है; अत: इन कषायभावों का अभाव करने के लिए निज अकषायस्वरूप आत्मतत्त्व की दृष्टि और अनुभूति प्रगट करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। ●●

(आराधना कथा कोष में से)

समाचार-सार

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं कुन्दकुन्द-प्रवचन-प्रसारण संस्थान, उज्जैन के संयुक्त तत्त्वावधान में

मङ्गलायतन अमृत महामहोत्सव ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित तीर्थधाम मङ्गलायतन की स्थापना के दस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में मङ्गलायतन अमृत महामहोत्सव का आयोजन 31 जनवरी से 06 फरवरी तक अनेकों विद्वानों, श्रेष्ठियों, विशिष्ट अतिथियों एवं साधर्मीजनों की उपस्थिति में सानन्द सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ श्री रमेश भण्डारी परिवार, बैंगलोर द्वारा झण्डारोहण करके किया गया। महोत्सव का उद्‌घाटन श्री अनिल जैन डैडी परिवार, भोपाल ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में श्री अशोक जैन भोपाल उपस्थित थे। इस अवसर पर आयोजित श्री आदिनाथ पञ्च कल्याणक विधान का उद्‌घाटन श्री ऋषभकुमार जैन परिवार, सहारनपुर ने किया और मुख्य कलश विराजमान करने का सौभाग्य श्री पुष्पेन्द्र जैन परिवार, गुना को प्राप्त हुआ। विधि-विधान सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य बाल ब्रह्मचारी पण्डित अभिनन्दनकुमार जैन शास्त्री एवं पण्डित संजयकुमार जैन शास्त्री तथा मङ्गलार्थी छात्रों ने अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न कराया।

इस अवसर पर अनेक भव्य कार्यक्रम सम्पन्न हुए जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

प्रवचन एवं स्वाध्याय : सम्पूर्ण महोत्सव के दौरान पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की नैरोबी पञ्च कल्याणक में हुए समयसार गाथा 17-18 के वीडियो प्रवचनों की प्रस्तुति अत्यन्त आकर्षण का केन्द्र रही। इसके अतिरिक्त डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; पण्डित विमलचन्द झांझरी, उज्जैन; बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर; पण्डित बाबूभाई मेहता, फतेपुर; पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन, आगरा; डॉ. राकेश जैन, नागपुर; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; पण्डित राजकुमार जैन, बांसवाड़ा; पण्डित अरुण जैन, अलवर; पण्डित अरिहंत झांझरी, उज्जैन; पण्डित धर्मेन्द्र शास्त्री, कोटा; पण्डित रतनचन्द चौधरी, कोटा; विदुषी ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन इत्यादि का प्रासङ्गिक स्वाध्याय / कक्षा / गोष्ठियों के माध्यम से लाभ प्राप्त हुआ।

विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम : महोत्सव के दौरान मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा ज्ञानगोष्ठी; मातादेवी तत्त्वचर्चा, डी.पी.एस. की बालिकाओं द्वारा; भगवान महावीर के पाँच नामों की सुन्दर नाटिका, मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा; तपकल्याणक सभा राजाओं द्वारा तथा करो सिद्धों से टेलीफोन, उज्जैन मुमुक्षु मण्डल द्वारा प्रस्तुत किये गये। जिन्हें देखकर सभी आत्मार्थियों को विशेष प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

ज्ञानवर्धक आध्यात्मिक गोष्ठियाँ : महोत्सव के दौरान समागत विद्वानों का अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके, तदर्थ विद्वानों एवं मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा अनेक गोष्ठियों का आयोजन किया गया। जिनके विषय इस प्रकार है – 1. जैनदर्शन की आराधना और प्रभावना; 2. जैनदर्शन का न्याय; 3. मुमुक्षु की पात्रता; 4. दृष्टि का विषय; 5. ध्यान – एक अनुशीलन; 6. पूज्य गुरुदेवश्री और उनका तत्त्वज्ञान।

जिनवाणी मन्दिर का नवीनीकरण / उद्घाटन एवं चित्र अनावरण : तीर्थधाम मङ्गलायतन परिसर में स्थित पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर की नवीन साजसज्जा की गयी है। इस नवीनीकरणयुक्त जिनवाणी मन्दिर का उद्घाटन श्री पीयूष हंसमुखभाई वोरा, सोनगढ़ / मुम्बई द्वारा किया गया। पण्डित दौलतरामजी की प्रतिकृति तथा जिनवाणी मन्दिर में स्थापित आचार्य भगवन्तों एवं ज्ञानी-धर्मात्माओं के नवीन चित्रों का अनावरण विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट की एक मीटिंग भी आयोजित की गयी। जिसमें दस वर्ष के कार्यों का लेखा-जोखा करने के साथ ही अनेक नवीन योजनाओं पर भी विचार-विमर्श हुआ।

सत्साहित्य का विमोचन : तीर्थधाम मङ्गलायतन की अनेक योजनाओं में से प्रमुख सत्साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत समयसार कलश की श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित **परमाध्यात्म तरंगिणी** तथा भट्टारकश्री ज्ञानभूषण द्वारा रचित **तत्त्वज्ञान तरंगिणी** नामक ग्रन्थों का लोकार्पण हुआ। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना भी उपस्थित जनसमुदाय के समक्ष प्रस्तुत की गयी। इस अवसर पर लगभग 25,000 रुपये का सत्साहित्य जन-जन तक पहुँचा।

सम्पूर्ण देश से पधारे विशिष्ट अतिथि : मङ्गल महोत्सव में उक्त नामों के अतिरिक्त जिन विशिष्ट अतिथियों ने भाग लिया। उनके नाम इस प्रकार हैं : श्री शान्तिलाल जैन, अमेरिका; श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; श्री प्रदीप चौधरी, किशनगढ़;

श्री दिलीप शाह, जयपुर; श्री अशोक जैन, जबलपुर; श्री शान्तिलाल जैन, जयपुर; श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; श्री अजित जैन, बड़ौदरा; श्री निखिल मेहता, मुम्बई; श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर; श्री आदिश जैन, दिल्ली इत्यादि प्रमुख थे।

महोत्सव में साधर्मी वात्सल्य भोज हेतु श्री विनय सेठी परिवार, दिल्ली का विशेष सहयोग रहा।

महामस्तकाभिषेक एवं समापन समारोह

कार्यक्रम के अन्तिम दिन भगवान श्री आदिनाथ का महामस्तकाभिषेक आयोजित किया गया। जिसमें सम्पूर्ण देश से पधारे साधर्मी भाईयों ने कलशाभिषेक का लाभ प्राप्त किया। अन्त में समस्त विद्वानों, श्रेष्ठियों एवं आगन्तुक साधर्मी भाई-बहिनों का हार्दिक आभार व्यक्त कर इस कार्यक्रम की पूर्णता की गयी।

इस प्रकार तीर्थधाम मङ्गलायतन के दसवें वार्षिक महोत्सव का यह भव्य कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

मङ्गलार्थी प्रतिभा सम्मान समारोह

तीर्थधाम मङ्गलायतन में सञ्चालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों की बहुआयामी प्रतिभाओं का उपस्थित जनसमुदाय से परिचय कराने के उद्देश्य से मङ्गलायतन अमृत महोत्सव में मङ्गलार्थी प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। जिसमें मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा पूरे वर्ष में किये गये उल्लेखनीय कार्यों के लिये प्रशस्ति-पत्र एवं पारितोषिक देकर उनका सम्मान किया गया। विदित हो कि सभी मङ्गलार्थी छात्रों ने किसी न किसी प्रतिभा में प्रमाण-पत्र एवं पुरुस्कार प्राप्त किया, जो यहाँ सञ्चालित विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों की प्रतिभा को प्रदर्शित करता है। पुरस्कार वितरण श्री दिलीप शाह, जयपुर एवं श्री टी. सी. जैन, भरतपुर का विशेष सहयोग रहा।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की ऐतिहासिक घोषणा

विश्वविद्यालय में जैनदर्शन के पाठ्यक्रम

तीर्थधाम मङ्गलायतन : अमृत महामहोत्सव के अवसर पर ही मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की ओर से एक ऐतिहासिक घोषणा की गयी कि मङ्गलायतन विश्वविद्यालय अब अपने दर्शन विज्ञान केन्द्र के माध्यम से जैनदर्शन के विविध पाठ्यक्रम सञ्चालित करने जा रहा है। विश्वविद्यालय की यह घोषणा एक सभा के अन्तर्गत की गयी। जिसमें विश्वविद्यालय के बोर्ड ऑफ गवरनर्स के चेयरमैन

श्री पवन जैन, इस विभाग के डीन डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; कुलपति डॉ. सतीशचन्द्र जैन; निर्देशक डॉ. जयन्तीलाल जैन; रजिस्ट्रार श्री मनजीत सिंह; प्रो. ओमप्रकाश जैन एवं श्री दिलीप शाह, जयपुर; श्री प्रदीप चौधरी, किशनगढ़; डॉ. राकेश जैन, नागपुर; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज इत्यादि की उपस्थिति में विश्वविद्यालय में सञ्चालित इन पाठ्यक्रमों की जानकारी प्रदान की।

प्रो. एस. सी. जैन, कुलपति ने विज्ञान और धर्म के पारस्परिक समन्वय की बात कही। डॉ. जयन्तीलाल जैन ने सभी पाठ्यक्रमों की रूपरेखा से जनसमुदाय को अवगत कराया। श्री पवन जैन ने मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की पृष्ठभूमि और इन पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम सम्बन्धी विस्तृत सूचना इसी अंक में प्रकाशित है।

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन फाउण्डेशन की स्थापना

अलीगढ़ : पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त वयोवृद्ध विद्वान पण्डित कैलाशचन्द्र जैन की पुण्य-स्मृति में उनके परिवारीजनों द्वारा **पण्डित कैलाशचन्द्र जैन फाउण्डेशन** की स्थापना की गयी है। इसका उद्देश्य आदरणीय पण्डितजी द्वारा लिखित सत्साहित्य का प्रकाशन एवं उपलब्धता के साथ-साथ अन्य विशिष्ट सत्साहित्य का प्रकाशन है। फाउण्डेशन द्वारा शीघ्र ही पण्डितजी द्वारा लिखित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग, छहढाला प्रश्नोत्तरी टीका, इत्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है।

वैराग्य समाचार

जयपुर : श्रीमती कला सेठी, धर्मपत्नी श्री नरेशकुमार सेठी, आई.ए.एस. का शान्तपरिणामों से देह-परिवर्तन हुआ है।

कोलकाता : श्री पद्मचन्द सेठी का शान्तपरिणामों से हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हुआ है। विदित हो कि आप मङ्गलार्थी ऋषभ सेठी के पिता थे।

देऊलगांवराजा-वाशिम (महा०) : श्री पद्मकुमार चेतनलाल डोणगांवकर का देहपरिवर्तन हुआ है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार इष्टवियोग की इस विषम परिस्थिति में आपके परिजनों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा के अभ्युदय की मङ्गल कामना करता है।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

दर्शन विज्ञान केन्द्र की प्रस्तुति

जैन दर्शन के पाठ्यक्रम

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार के ऊपर प्रेरक सूत्र वाक्य 'विश्वं ज्ञाने प्रतिष्ठितम्' अङ्कित है। ज्ञान में विश्व प्रतिष्ठित है। मङ्गलायतन दो शब्दों के योग से बना है — 'मङ्गल' और 'आयतन' इस तरह मङ्गलायतन का अर्थ – वह स्थान जो जीवन को माङ्गलिक बनाये। विश्व में ज्ञान का प्रचार मङ्गलकारी है।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की स्थापना उत्तर प्रदेश सरकार के अधिनियम क्रमाँक 32 (वर्ष 2006) के अन्तर्गत इस उद्देश्य से की गयी कि छात्रों को भारतीय संस्कारों के साथ उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान कर प्रतिभा-सम्पन्न बनाया जाए कि वे आज के बदलते विश्व में सभी चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सकें। वर्ष 2006 में आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्था के द्वारा स्थापित **मङ्गलायतन विश्वविद्यालय**, का उद्देश्य तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे संसार में छात्रों को उत्कृष्ट शिक्षा प्रदान करना है, जिससे वे स्वयं को अन्य युवाओं से बेहतर सिद्ध कर सकें। **मङ्गलायतन विश्वविद्यालय** के छात्रों को विश्व की सर्वोत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिए एशिया की प्रमुख कम्पनी एडुकॉम्प के साथ जुड़ी हुई है। इससे छात्रों को सर्वश्रेष्ठ अध्यापन, प्रशिक्षण और उद्योग केन्द्रित पाठ्यक्रमों को पढ़ने का मौका मिलता है। विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान करने के लिए नौ संस्थान स्थापित किए गए हैं।

विश्वविद्यालय इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट, बायोटेक्नोलॉजी, फार्मेसी, ललितकला, पत्रिकारिता एवं जनसञ्चार, अध्यापन शिक्षा, ट्रैवेल एण्ड हॉस्पिटलिटी प्रबन्धन, कम्प्यूटर एप्लीकेशन और कानून के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्रदान कर रहा है। बोर्ड ऑफ गर्वनर्स के चेयरमैन श्री पवन जैन और वाइस चेयरमैन श्री मोहन लखमराजू हैं। प्रो. एस.सी. जैन **मङ्गलायतन विश्वविद्यालय** के कुलपित है।

दर्शन विज्ञान केन्द्र

नैतिक शिक्षा के बिना व्यावसायिक शिक्षा से जीवन में उत्कृष्टता सम्भव नहीं है। नैतिक शिक्षा की भागीदारी न होने से जीवन के सभी पहलुओं में मानवीय मूल्यों का ह्रास होता है। जिम्मेदार नागरिक बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यावसायिक शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों की शिक्षा को भी बराबर का स्थान दिया जाए। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हाल में **मङ्गलायतन विश्वविद्यालय** में दर्शन विज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई है। पहले चरण में जैन दर्शन प्रारम्भ किया जा रहा है। इस सेन्टर को दुनियाभर में जैन शिक्षा के प्रचार-प्रसार और शोध का महत्वपूर्ण केन्द्र बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके माध्यम से जैन दर्शन में सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम, डिप्लोमा पाठ्यक्रम, स्नातक, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम और शोध पाठ्यक्रम संचालित किए जाएँगे।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर और **तीर्थधाम मङ्गलायतन**, अलीगढ़ के साथ एमओयू पर हस्ताक्षर किए हैं। दोनों ही संस्थानों को जैन शिक्षा के सन्दर्भ में काफी अनुभव है और इसका लाभ **मङ्गलायतन विश्वविद्यालय** को मिलेगा। इण्टरनेशनल समर स्कूल फॉर जैन स्टडीज, नयी दिल्ली का भी इसमें सहयोग रहेगा।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, डीन, दर्शन विज्ञान केन्द्र

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैन विद्वान हैं। डॉ. भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न और एम.ए. हैं। उन्होंने इन्दौर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की है। डॉ. भारिल्ल को जैन समुदाय ने भी समय-समय पर कई पुरस्कारों एवं उपाधियों से सम्मानित किया है। डॉ. भारिल्ल पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट और उसकी गतिविधियों के विकास में अग्रणीय रहें। डॉ. भारिल्ल ने 78 किताबें और कई प्रकाशन सम्पादित किये हैं। उनकी 45 लाख से अधिक प्रतियाँ जनता तक पहुँच चुकी हैं। उन्होंने जैनदर्शन के प्रचारार्थ कई विदेश यात्राएँ की हैं। समाज में आध्यात्मिक क्रान्ति के लिए उनका अद्वितीय योगदान रहा है।

डॉ. जयन्तीलाल जैन, निदेशक, दर्शन विज्ञान केन्द्र

डॉ. जयन्तीलाल जैन ने ओकलाहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी, यू.एस.ए. से अर्थशास्त्र में और मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई से जैन दर्शन में पी.एच.डी. की

है। वह जैनोलॉजी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एमेरिटस के पद पर रह चुके हैं। डॉ. जैन ने इण्डियन बैंक, चेन्नई में मुख्य आर्थिक सलाहकार और महाप्रबन्धक के रूप में कार्य किया। डॉ. जैन ने जैनदर्शन, अर्थशास्त्र और बैकिंग पर कई लेख प्रकाशित किये हैं। उनकी पुस्तकें 'प्योर सोल एण्ड इनफायनाइट ट्रेजर' एवं 'आचार्य कुन्दकुन्द और जैन दर्शन' मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। उन्होंने भारत और विदेशों में कई विशेष व्याख्यान भी दिये हैं और उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में काफी अनुभव है।

प्रवक्ता

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, डीन; **डॉ. जयन्तीलाल जैन,** डायरेक्टर; **प्रो. ओमप्रकाश जैन,** पी.एच.डी.; **डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन,** पी.एच.डी.; **श्री सौरभ जैन,** लेक्चरार।

अतिथि प्रवक्ता

डॉ. शुगनचन्द जैन, इण्टरनेशनल स्कूल फॉर जैन स्टडीज, नयी दिल्ली; **डॉ. किरीट गोसलिया,** एम.डी., फिनिक्स, एरीजोना, यू.एस.ए.; **डॉ. राजमल जैन,** पीआरएल, इसरो, प्रोमीनेंट स्पेस साइंटिंस, अहमदाबाद; **डॉ. पारसमल अग्रवाल,** प्रोफेसर एमेरिटस, ओएसयू, यूएसए, प्रोफेसर एमेरिटस विक्रम यूनिवर्सिटी, उज्जैन; **डॉ. योगेशचन्द्र जैन,** पी.एच.डी.; **डॉ. राकेशकुमार जैन,** पी.एच.डी.; **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन।**

जैनदर्शन के पाठ्यक्रम

(1) सर्टीफिकेट कोर्स, (2) डिप्लोमा कोर्स, (3) बैचेलर ऑफ आर्ट्स, (4) मास्टर ऑफ आर्ट्स, (5) पी.एच.डी.

सम्पर्कसूत्र :

डॉ जयन्ती लाल जैन, निदेशक, दर्शन विज्ञान केन्द्र

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, बेसवाँ, अलीगढ़

jl.jain@mangalayatan.edu.in Mob. No. +917351002565

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

33rd Milestone, Aligarh-Mathura, Highway, Aligarh - 202145 (U.P.)

Mobile No. 08476007937